अनुक्रम

हमारे स्वामी जी

सिंध के नवाब जिले के बेराणी गाँव में नगरसेठ श्री थाऊमलजी सिरुमलानी के श्रीमंत और पवित्र परिवार में वि.सं. 1998 में चैत वद 6 के दिन एक अलौकिक बालक का प्रागट्य हुआ। बालक का नाम रखा गया आसुमल। उनके जन्म के साथ ही परिवार में कई चमत्कारपूर्ण घटनायें घटने लगीं। कोई एक बड़ा सौदागर किसी अगम्य प्रेरणा से वहाँ आया और एक बहुत कीमती झूला नगर सेठ को भेंट दे गया। साढ़े तीन साल की उम्र में ही इस प्रज्ञावान मेधावी बालक ने स्कूल में सिर्फ एक ही बार कविता सुन कण्ठस्थ करके विद्यार्थियों एवं अध्यापकों को आश्चर्यचकित कर दिया। कुलगुरु ने भविष्यकथन कियाः 'यह बालक आगे जाकर एक महान संत बनेगा और लोगों का उद्धार करेगा।'

कुदरत ने करवट ली। सन् 1947 में भारत-पाकिस्तान के विभाजन में सेठ थाऊमलजी अपनी सारी धन-सम्पत्ति, जमीन-जायदाद, पशुधन, मानों अपना एक रजवाड़ा पाकिस्तान में छोड़कर भारत, अमदावाद में आकर बस गये। बालक आसुमल के पढ़ाई की व्यवस्था एक स्कूल में कर दी गयी लेकिन ब्रह्मविद्या के राही इस बालक को लौकिक विद्या पढ़ने में रुचि नहीं हुई। वे किसी पेड़ के नीचे एकांत में जाकर ध्यानमग्न हो जाते। प्रसन्नता और अन्य अलौकिक गुणों के कारण वे अपने स्कूल के अध्यापकों के प्रिय विद्यार्थी बन गये।

आसुमल की छोटी उम्र में ही पिता की देह शांत हो गयी। बालक आसुमल को परिवार के भरण-पोषणार्थ बड़े भाई के साथ व्यापार-धंधे में सम्मिलित होना पड़ा। अपनी कुशाग्र लाभ कराया लेकिन खुद को केवल आध्यात्मिक धन का अर्जन करने की लगन रही।

पिता के निधन के बाद आसुमल की विवेकसंपन्न बुद्धि ने संसार की असारता और परमात्मा ही एकमात्र परम सार है यह बात जान ली थी। ध्यान-भजन में प्रारंभ से ही रूचि थी। दस वर्ष की उम्र में तो अनजाने ही रिद्धि-सिद्धि सेवा में हाजिर हो गयी थी लेकिन अगम के ये प्रवासी वहीं अटकनेवाले नहीं थे। वैराग्य की अग्नि उनके अंतरतम में प्रकट हो चुकी थी।

कुछ बड़े होते ही घरवालों ने आसुमल की शादी करने की तैयारी की। आसुमल सचेत हो गये। घर छोड़कर पलायन हो गये लेकिन घरवालों ने उन्हें खोज लिया। तीव्रतर प्रारब्ध के कारण शादी हो गयी। आसुमल उस सुवर्ण-बन्धन में रुके नहीं। सुशील पवित्र धर्मपत्नी लक्ष्मीदेवी को समझाकर अपने परम लक्ष्य परमात्म-प्राप्ति, आत्म-साक्षात्कार के लिए घर छोड़कर चले गये। आप जंगलों में, पहाड़ों में, गुफाओं में एवं अनेक तीर्थों में घूमे, कंटकील-पथरीले मार्गों पर चले, शिलाओं की शैया पर सोये, मौत का मुकाबला करना पड़े ऐसे स्थानों में जाकर अपने उग्र कठोर साधनाएँ कीं। इन सब तितिक्षाओं के बाद नैनीताल के जंगल में आपको ब्रह्मनिष्ठ सदगुरुदेव परम पूज्य स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज के श्रीचरणों का सान्निध्य प्राप्त हुआ। वहाँ भी कठोर

कसौटियाँ हुईं किन्तु आप सब कसौटियाँ पार करके सदगुरुदेव का कृपा-प्रसाद पाने के अधिकारी बन गये।

गुरुदेव ने आसुमल घर में ही ध्यान-भजन करने का आदेश देकर अमदावाद वापस भेज दिया। घर तो आये लेकिन जिस सच्चे साधक का आखिरी लक्ष्य सिद्ध न हुआ हो उसको चैन कहाँ?

चातक मीन पतंग जब, पिय बिन नहीं रह पाय।

साध्य को पाये बिना, साधक क्यों रह जाय?

वे घर छोड़ नर्मदा किनारे जाकर अनुष्ठान में संलग्न हो गये। एक बार नदी के किनारे ध्यानस्थ बैठे थे। मध्यरात्रि के वक्त तूफान-आँधी चली। वे उठे और किसी एक मकान के बरामदे में जाकर बैठ गये और जगत को भूलकर उसी प्यारे परमात्मा के ध्यान में फिर से डूब गये।

रात बीती जा रही थी। कोई एक मच्छीमार लघुशंका करने बाहर निकला तो आपको वहाँ बैठे हुए देखकर चौंका। आपको चोर डाकू समझकर उसने पूरे मोहल्ले को जगाया। भीड़ इकट्ठी हो गयी। आप पर हमला करने के लिए लोगों ने लाठी, भाला, चाकू-छुरी, धारिया लेकर आपको घेर लिया। लेकिन....

जाको राखे साँईयाँ मार सके न कोय।

हाथ में हथियार होने पर भी वे मच्छीमार लोग आसुमल के नजदीक न आ सके, क्योंकि जिनके पास आत्मशांति का हथियार होता है उनका लाठी, भाला, चाकू, छुरीवाले मच्छीमार क्या कर सकते हैं? उस विलक्षण प्रसंग का वास्तविक वर्णन करना यहाँ असंभव है।

ईश्वर की शांति में डूबने से जन्म-मरण का चक्कर रुक जाता है तो मच्छीमारों के हथियार रुक जायें और मन बदल जाय इसमें क्या आश्चर्य है?

शोरगुल सुनकर आसुमल का ध्यान टूटा। परिस्थिति का ख्याल आया। आत्ममस्ती में मस्त, स्वस्थ शांतचित्त होकर वे खड़े हुए। हमला करने के लिए तत्पर लोगों पर एक प्रेमपूर्ण दृष्टि डालते हुए, धीर-गंभीर निश्चल कदम उठाते हुए आसुमल भीड़ को चीरकर बाहर निकल गये। बाद में लोगों को पता चला तो माफी माँगी और अत्यंत आदर करने लगे।

फिर वे गणेशपुरी में अपने एकान्तस्थान में पधारे हुए सदगुरुदेव प.पू. लीलाशाहजी महाराज के श्रीचरणों में पहुँच गये।

साधना की इतनी तीव्र लगन वाले अपने प्यारे शिष्य को देखकर सदगुरुदेव का करुणापूर्ण हृदय छलक उठा। उनके हृदय से बरसते कृपा-अमृत ने साधक की तमाम साधनायें पूर्ण कर दी। पूर्ण गुरु ने शिष्य को पूर्ण गुरुत्व में सुप्रतिष्ठित कर दिया। साधक में सिद्ध प्रकट हो गया। जीव को अपने शिवत्व की पहचान हो गयी। उस परम पावन दिन आत्म-साक्षात्कार हो गया। आसुमल में से संत श्री आसारामजी महाराज का आविर्भाव हो गया।

उसके बाद कुछ वर्ष डीसा में ब्रह्मानन्द की मस्ती लूटते हुए एकान्त में रहे। फिर अमदावाद में मोटेरा गाँव के पास साबरमती नदी के किनारे भक्तों ने एक कच्ची कुटिया बना दी। वहाँ से उन

पूर्ण विकसित सुमधुर आध्यात्मिक पुष्प की मधुर सुवास चारों दिशाओं में फैलने लगी। दिन को भी जहाँ चोरी और खून की घटनायें हो जायें ऐसी डरावनी उबड़-खाबड़ भूमि में स्थित वह कुटिया आज एक महान तीर्थधाम बन चुकी है। उसका नाम है **संत श्री आसारामजी आश्रम।**

इस ज्ञान की प्याऊ में आकर समाज के सुप्रतिष्ठित श्रीमंत लोगों से लेकर सामान्य जनता ध्यान और सत्संग का अमृत पीते हैं और अपने जीवन की दुःखद गुत्थियाँ सुलझाकर धन्य होते हैं। यहाँ वर्ष भर में दो-तीन बड़ी ध्यान योग शिविरें लगती हैं। हर रविवार और बुधवार के दिन भी ऐसी ही एक 'मिनी शिविर' हो जाती है।

इस साबर तट स्थित आश्रमरूपी विशाल वटवृक्ष की शाखाएँ आज भारत ही नहीं, अपितु संपूर्ण विश्वभर में फैल चुकी हैं। आज विश्वभर में करीब 165 आश्रम स्थापित हो चुके हैं जिनमें हर वर्ण, जाति एवं संप्रदाय के लोग देश-विदेश से आकर आत्मानंद में डुबकी लगाते हैं, अपने को धन्य-धन्य अनुभव करते हैं और हृदय में परमेश्वर का शांति प्रसाद पाते हैं।

साधकों का आध्यात्मिक उत्थान हो सके, उन्हें घर बैठे भी आध्यात्मिक अमृत मिले इसलिए समिति ने संतों के आध्यात्मिक बगीचों में से कुछ पुष्प चुनकर यहाँ प्रस्तुत किये हैं।

श्री योग वेदान्त सेवा समिति

अनुक्रम

हो जा अजर ! हो जा अमर !!

जो मोक्ष है तू चाहता, विष सम विषय तज तात रे।
आर्जव क्षमा संतोष शम दम, पी सुधा दिन रात रे॥
संसार जलती आग है, इस आग से झट भाग कर।
आ शांत शीतल देश में, हो जा अजर ! हो जा अमर !!॥1॥

पृथिवी नहीं जल भी नहीं, नहीं अग्नि तू नहीं है पवन।
आकाश भी तू है नहीं, तू नित्य है चैतन्यघन॥
इन पाँचों का साक्षी सदा, निर्लेप है तू सर्वपर।
निजरूप को पहिचानकर, हो जा अजर ! हो जा अमर!!॥2॥

चैतन्य को कर भिन्न तन से, शांति सम्यक् पायेगा।
होगा तुरंत ही तू सुखी, संसार से छुट जायेगा॥
आश्रम तथा वर्णादि का, किञ्चित् न तू अभिमान कर।
सम्बन्ध तज दे देह से, हो जा अजर ! हो जा अमर!!॥3॥

नहीं धर्म है न अधर्म तुझमें ! सुख-दुःख का भी लेश न।
हैं ये सभी अज्ञान में, कर्त्तापना भोक्तापना॥
तू एक दृष्टा सर्व का, इस दृश्य से है दूरतर।
पहिचान अपने आपको, हो जा अजर ! हो जा अमर !!॥4॥
कर्तृत्व के अभिमान काले, सर्प से है तू डँसा।
नहीं जानता है आपको, भव पाश में इससे फँसा॥
कर्त्ता न तू तिहुँ काल में, श्रद्धा सुधा का पान कर।
पीकर उसे हो सुखी, हो जा अजर ! हो जा अमर !!॥5॥
मैं शुद्ध हूँ मैं बुद्ध हूँ, ज्ञानाग्नि ऐसी ले जला।
मत पाप मत संताप कर, अज्ञान वन को दे जला॥
ज्यों सर्प रस्सी माँहिं, जिसमें भासता ब्रह्माण्ड भर।
सो बोध सुख तू आप है, हो जा अजर ! हो जा अमर !!॥6॥
अभिमान रखता मुक्ति का, सो धीर निश्चय मुक्त है।
अभिमान करता बन्ध का, सो मूढ़ बन्धनयुक्त है॥
'जैसी मति वैसी गति', लोकोक्ति यह सच मानकर।
भव-बन्ध से निर्मुक्त हो, हो जा अजर ! हो जा अमर!!॥7॥
आत्मा अमल साक्षी अचल, विभु पूर्ण शाश्वत् मुक्त है।
चेतन असंगी निःस्पृही, शुचि शांत अच्युत तृप्त है॥
निज रूप के अज्ञान से, जन्मा करे फिर जाय मर।
भोला ! स्वयं को जानकर, हो जा अजर ! हो जा अमर !!॥8॥
ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

सुख से विचर !

कूटस्थ हूँ अद्वैत हूँ, मैं बोध हूँ मैं नित्य हूँ।
अक्षय तथा निस्संग आत्मा, एक शाश्वत् सत्य हूँ॥
नहीं देह हूँ नहीं इन्द्रियाँ, हूँ स्वच्छ से भी स्वच्छतर।
ऐसी किया कर भावना, निःशोक हो सुख से विचर॥1॥
मैं देह हूँ फाँसी महा, इस पाप में जकड़ा गया।
चिरकाल तक फिरता रहा, जन्मा किया फिर मर गया॥
'मैं बोध हूँ' ज्ञानास्त्र ले, अज्ञान का दे काट सर।

स्वछन्द हो, निर्द्वन्द्व हो, आनन्द कर सुख से विचर॥2॥
निष्क्रिय सदा निस्संग तू, कर्त्ता नहीं भोक्ता नहीं।
निर्भय निरंजन है अचल, आता नहीं जाता नहीं॥
मत राग कर मत द्वेष कर, चिन्ता रहित हो जा निडर।
आशा किसी की क्यों करे, संतृप्त हो सुख से विचर॥3॥
यह विश्व तुझसे व्याप्त है, तू विश्व में भरपूर है।
तू वार है तू पार है, तू पास है तू दूर है॥
उत्तर तू ही दक्षिण तू ही, तू है इधर तू है उधर।
दे त्याग मन की क्षुद्रता, निःशंक हो सुख से विचर॥4॥
निरपेक्ष द्रष्टा सर्व का, इस दृश्य से तू अन्य है।
अक्षुब्ध है चिन्मात्र है, सुख-सिन्धु पूर्ण अनन्य है॥
छः ऊर्मियों से है रहित, मरता नहीं तू है अमर।
ऐसी किया कर भावना, निर्भय सदा सुख से विचर॥5॥
आकार मिथ्या जान सब, आकार बिन तू है अचल।
जीवन मरण है कल्पना, तू एकरस निर्मल अटल॥
ज्यों जेवरी में सर्प त्यों, अध्यस्त तुझमें चर अचर।
ऐसी किया कर भावना, निश्चिन्त हो सुख से विचर॥6॥
दर्पण धरे जब सामने, तब ग्राम उसमें भासता।
दर्पण हटा लेते जभी, तब ग्राम होता लापता॥
ज्यों ग्राम दर्पण माँहि तुझमें, विश्व त्यों आता नजर।
संसार को मत देख, निज को देख तू सुख से विचर॥7॥

आकाश घट के बाह्य है, आकाश घट भीतर बसा।
सब विश्व में है पूर्ण तू ही, बाह्य भीतर एक सा॥
श्रृति संत गुरु के वाक्य ये, सच मान रे विश्वास कर।
भोला ! निकल जग-जाल से, निर्बन्ध हो सुख से विचर॥8॥
ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

आश्चर्य है ! आश्चर्य है !!

छूता नहीं मैं देह फिर भी, देह तीनों धारता।

रचना करूँ मैं विश्व की, नहीं विश्व से कुछ वासता॥
कर्त्तार हूँ मैं सर्व का, यह सर्व मेरा कार्य है।
फिर भी न मुझमें सर्व है, आश्चर्य है ! आश्चर्य है !!॥1॥
नहीं ज्ञान ज्ञाता ज्ञेय में से, एक भी है वास्तविक।
मैं एक केवल सत्य हूँ, ज्ञानादि तीनों काल्पनिक॥
अज्ञान से जिस माँहिं भासे, ज्ञान ज्ञाता ज्ञेय हैं।
सो मैं निरंजन देह हूँ, आश्चर्य है ! आश्चर्य !!॥2॥
है दुःख सारा द्वैत में, कोई नहीं उसकी दवा।
यह दृश्य सारा है मृषा, फिर द्वैत कैसा वाह वा !!॥
चिन्मात्र हूँ मैं एकरस, मम कल्पना यह दृश्य है।
मैं कल्पना से बाह्य हूँ, आश्चर्य है ! आश्चर्य है !!॥3॥
नहीं बन्ध है नहीं मोक्ष है, मुझमें न किंचित् भ्रान्ति है।
माया नहीं काया नहीं, परिपूर्ण अक्षय शांति है॥
मम कल्पना है शिष्य, मेरी कल्पना आश्चर्य है।
साक्षी स्वयं हूँ सिद्ध मैं, आश्चर्य है ! आश्चर्य है !!॥4॥
सशरीर सारे विश्व की, किंचित् नहीं सम्भावना।
शुद्धात्म मुझ चिन्मात्र में, बनती नहीं है कल्पना॥
तिहूँकाल तीनों लोक, चौदह भुवन माया-कार्य है।
चिन्मात्र मैं निस्संग हूँ, आश्चर्य है ! आश्चर्य है !!॥5॥
रहता जनों में द्वैत का, फिर भी न मुझमें नाम है।
दंगल मुझे जंगल जँचे, फिर प्रीति का क्या काम है॥
'मैं देह हूँ' जो मानता, सो प्रीति करि दुःख पाय है।
चिन्मात्र में भी संग हो, आश्चर्य है ! आश्चर्य !!॥6॥
नहीं देह मैं नहीं जीव मैं, चैतन्यघन मैं शुद्ध हूँ।
बन्धन यही मुझ माँहिं था, थी चाह मैं जीता रहूँ॥
ब्रह्माण्डरूपी लहरियाँ, उठ-उठ बिला फिर जाय हैं।
परिपूर्ण मुझ सुखसिंधु में आश्चर्य है ! आश्चर्य !!॥7॥
निस्संग मुझ चित्सिन्धु में, जब मन पवन हो जाय लय।
व्यापार लय हो जीव का, जग नाव भी होवे विलय॥
इस भाँति से करके मनन, नर प्राज्ञ चुप हो जाय है।
भोला ! न अब तक चुप हुआ, आश्चर्य है ! आश्चर्य है !!॥8॥
ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

प्राज्ञ-वाणी

मैं हूँ निरंजन शांत निर्मल, बोध माया से परे।
हूँ काल का भी काल मैं, मन-बुद्धि-काया से परे॥
मैं तत्त्व अपना भूलकर, व्यामोह में था पड़ गया।
श्रुति संत गुरु ईश्वर-कृपा, सब मुक्त बन्धन से भया॥1॥
जैसे प्रकाशूँ देह मैं, त्यों ही प्रकाशूँ विश्व सब।
हूँ इसलिए मैं विश्व सब, अथवा नहीं हूँ विश्व अब॥
सशरीर सारे विश्व का है, त्याग मैंने कर दिया।
सब ठोर मैं ही दीखता हूँ, ब्रह्म केवल नित नया॥2॥
जैसे तरंगे तार बुदबुद, सिन्धु से नहीं भिन्न कुछ।
मुझ आत्म से उत्पन्न जग, मुझमें नहीं है अन्य कुछ॥
ज्यों तन्तुओं से भिन्न पट की, है नहीं सत्ता कहीं।
मुझ आत्म से इस विश्व की, त्यों भिन्न सत्ता है नहीं॥3॥
ज्यों ईख के रस माँहिं शक्कर, व्याप्त होकर पूर्ण है।
आनन्दघन मुझ आत्म से, सब विश्व त्यों परिपूर्ण है॥
अज्ञान से ज्यों रज्जु अहि हो, ज्ञान से हट जाय है।
अज्ञान निज से जग बना, निज ज्ञान से मिट जाय है॥4॥
जब है प्रकाशक तत्त्व मम तो, क्यों न होऊँ प्रकाश मैं।
जब विश्व भर को भासता, तो आप ही हूँ भास मैं॥
ज्यों सीप में चाँदी मृषा, मरुभूमि में पानी यथा।
अज्ञान से कल्पा हुआ, यह विश्व मुझमें है तथा॥5॥
ज्यों मृत्तिका से घट बने, फिर मृत्तिका में होय लय।
उठती यथा जल से तरंगे, होय फिर जल में विलय॥
कंकण कटक बनते कनक से, लय कनक में हो यथा।
मुझसे निकलकर विश्व यह, मुझ माँहिं लय होता तथा॥6॥
होवे प्रलय इस विश्व का, मुझको न कुछ भी त्रास है।
ब्रह्मादि सबका नाश हो, मेरा न होता नाश है॥
मैं सत्य हूँ मैं ज्ञान हूँ, मैं ब्रह्मदेव अनन्त हूँ।
कैसे भला हो भय मुझे, निर्भय सदा निश्चिंत हूँ॥7॥

आश्चर्य है आश्चर्य है, मैं देह वाला हूँ यदपि।
आता न जाता हूँ कहीं, भूमा अचल हूँ मैं तदपि॥
सुन प्राज्ञ वाणी चित्त दे, निजरूप में अब जाग जा।
भोला ! प्रमादी मत बने, भवजेल से उठ भाग जा॥8॥
ॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

कैसे भला फिर दीन हो?

ज्यों सीप की चाँदी लुभाती, सीप के जाने बिना।
त्यों ही विषय सुखकर लगे हैं, आत्म पहचाने बिना॥
अज अमर आत्मा जानकर, जो आत्म में तल्लीन हो।
सब रस विरस लगते उसे, कैसे भला फिर दीन हो?॥1॥

सुन्दर परम आनन्दघन, निज आत्म को नहीं जानता।
आसक्त होकर भोग में, सो मूढ हो सुख मानता॥
ज्यों सिंधु में से लहर जिसमें, विश्व उपजे लीन हो।
'मैं हूँ वही' जो मानता, कैसे भला फिर दीन हो?॥2॥

सब प्राणियों में आपको, सब प्राणियों को आप में।
जो प्रज्ञा मुनि है जानता, कैसे फँसे फिर पाप में॥
अक्षय सुधा के पान में, जिस संत का मन लीन हो।
क्यों कामवश सो हो विकल, कैसे भला फिर दीन हो?॥3॥

है काम वैरी ज्ञान का, बलवान के बल को हारे।
नर धीर ऐसा जानकर, क्यों भोग की इच्छा करे?
जो आज है कल ना रहे, प्रत्येक क्षण ही क्षीण हो।
ऐसे विनश्वर भोग में, कैसे भला फिर दीन हो?॥4॥

तत्वज्ञ विषय न भोगता, ना खेद मन में मानता।
निज आत्म केवल देखता, सुख दुःख सम है जानता॥
करता हुआ भी नहीं करे, सशरीर भी तनहीन हो।

निंदा-प्रशंसा सम जिसे, कैसे भला फिर दीन हो?॥5॥

सब विश्व मायामात्र है, ऐसा जिसे विश्वास है।
सो मृत्यु सम्मुख देखकर, लाता न मन में त्रास है॥
नहीं आस जीने कि जिसे, और त्रास मरने की न हो।
हो तृप्त अपने आपमें, कैसे भला फिर दीन हो?॥6॥

नहीं ग्राह्य कुछ नहीं त्याज्य कुछ, अच्छा बुरा नहीं है कहीं।
यह विश्व है सब कल्पना, बनता बिगड़ता कुछ नहीं॥
ऐसा जिसे निश्चय हुआ, क्यों अन्य के स्वाधीन हो?
सन्तुष्ट नर निर्द्वन्द्व सो, कैसे भला फिर दीन हो?॥7॥

श्रुति संत सब ही कर रहे, ब्रह्मादि गुरु सिखला रहे।
श्रीकृष्ण भी बतला रहे, शुक आदि मुनि दिखला रहे॥
सुख सिन्धु अपने पास है, सुख सिन्धु जल की मीन हो।
भोला ! लगा डुबकी सदा, मत हो दुःखी मत दीन हो॥8॥
ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

सब हानि-लाभ समान है

संसार कल्पित मानता, नहीं भोग में अनुरागता।
सम्पत्ति पा नहीं हर्षता, आपत्ति से नहीं भागता॥
निज आत्म में संतृप्त है, नहीं देह का अभिमान है।
ऐसे विवेकी के लिए, सब हानि-लाभ समान है॥1॥

संसारवाही बैल सम, दिन रात बोझा ढोय है।
त्यागी तमाशा देखता, सुख से जगे है सोय है॥
समचित्त है स्थिर बुद्धि, केवल आत्म-अनुसन्धान है।
तत्त्वज्ञ ऐसे धीर को, सब हानि-लाभ समान है॥2॥

इन्द्रादि जिस पद के लिए, करते सदा ही चाहना।
उस आत्मपद को पाय के, योगी हुआ निर्वासना॥

है शोक कारण रोग कारण, राग का अज्ञान है।
अज्ञान जब जाता रहा, सब हानि-लाभ समान है॥3॥

आकाश से ज्यों धूम का, सम्बन्ध होता है नहीं।
त्यों पुण्य अथवा पाप को, तत्त्वज्ञ छूता है नहीं॥
आकाश सम निर्लेप जो, चैतन्यघन प्रज्ञान है।
ऐसे असंगी प्राज्ञ को, सब हानि-लाभ समान है॥4॥

यह विश्व सब है आत्म ही, इस भाँति से जो जानता।
यश वेद उसका गा रहे, प्रारब्धवश वह बर्तता॥
ऐसे विवेकी संत को, न निषेध है न विधान है।
सुख दुःख दोनों एक से, सब हानि-लाभ समान है॥5॥

सुर नर असुर पशु आदि जितने, जीव हैं संसार में।
इच्छा अनिच्छा वश हुए, सब लिप्त है व्यवहार में॥
इच्छा अनिच्छा से छुटा, बस एक संत सुजान है।
उस संत निर्मल चित्त को, सब हानि-लाभ समान है॥6॥

विश्वेश अद्वय आत्म को, विरला जगत में जानता।
जगदीश को जो जानता, नहीं भय किसी से मानता॥
ब्रह्माण्ड भर को प्यार करता, विश्व जिसका प्राण है।
उस विश्व-प्यारे के लिए, सब हानि-लाभ समान है॥7॥

कोई न उसका शत्रु है, कोई न उसका मित्र है।
कल्याण सबका चाहता है, सर्व का सन्मित्र है॥
सब देश उसको एक से, बस्ती भले सुनसान है।
भोला ! उसे फिर भय कहाँ, सब हानि-लाभ समान है॥8॥
ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

पुतली नहीं तू मांस की

जहाँ विश्व लय हो जाय तहँ, भ्रम भेद सब बह जाय है।

अद्वय स्वयं ही सिद्ध केवल, एक ही रह जाय है॥
सो ब्रह्म है तू है वही, पुतली नहीं तू मांस की।
नहीं वीर्य तू नहीं रक्त तू, नहीं धौंकनी तू साँस की॥1॥

जहाँ हो अहन्ता लीन तहँ, रहता नहीं जीवत्व है।
अक्षय निरामय शुद्ध संवित्, शेष रहता तत्त्व है॥
सो ब्रह्म है तू है वही, पुतली नहीं तू मांस की।
नहीं जन्म तुझमें नहीं मरण, नहीं पोल है आकाश की॥2॥
दिक्काल जहँ नहीं भासते, होता जहाँ नहीं शून्य है।
सच्चित् तथा आनन्द आत्मा, भासता परिपूर्ण है॥
सो ब्रह्म है तू है वही, पुतली नहीं तू मांस की।
नहीं त्याग तुझमें नहीं ग्रहण, नहीं गाँठ है अभ्यास की॥3॥

चेष्टा नहीं जड़ता नहीं, नहीं आवरण नहीं तम जहाँ।
अव्यय अखंडित ज्योति शाश्वत्, जगमगाती सम जहाँ॥
सो ब्रह्म है तू है वही, पुतली नहीं तू मांस की।
कैसे तुझे फिर बन्ध हो, नहीं मूर्ति तू आभास की॥4॥

जो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है, नहीं व्योम पंचक है जहाँ।
परसे पर ध्रुव शांत शिव ही, नित्य भासे है वहाँ॥
सो ब्रह्म है तू है वही, पुतली नहीं तू मांस की।
गुण तीन से तू है परे, चिन्ता तुझे क्या नाश की॥5॥

जो ज्योतियों की ज्योति है, सबसे प्रथम जो भासता।
अक्षर सनातन दिव्य दीपक, सर्व विश्व प्रकाशता॥
सो ब्रह्म है तू है वही, पुतली नहीं तू मांस की।
तुझको प्रकाशे कौन तू है, दिव्य मूर्ति प्रकाश की॥6॥

शंका जहाँ उठती नहीं, किंचित् जहाँ न विकार है।
आनन्द अक्षय से भरा, नित ही नया भण्डार है॥
सो ब्रह्म है तू है वही, पुतली नहीं तू मांस की।
फिर शोक तुझमें है कहाँ, तू है अवधि संन्यास की॥7॥

जिस तत्त्व को कर प्राप्त परदा, मोह का फट जाय है।

जल जाय हैं सब कर्म, चिज्जड़-ग्रन्थि जड़ कट जाय है॥
सो ब्रह्म है तू है वही, पुतली नहीं तू मांस की।
भोला ! स्वयं हो तृप्ति सुतली, काट दे भवपाश की॥8॥
ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

सर्वात्म अनुसन्धान कर

मायारचित यह देह है, मायारचित ही गेह है।
आसक्ति फाँसी है कड़ी, मजबूत रस्सी स्नेह है॥
भव भेद में है सर्वदा, मत भेद पर तू ध्यान धर।
सर्वत्र आत्मा देख तू, सर्वात्म अनुसंधान कर॥1॥

माया महा है मोहनी, बन्धन अमंगल कारिणी।
व्यामोहकारिणी शोकदा, आनन्द मंगल कारिणी॥
माया मरी को मार दे, मत देह में अभिमान कर।
दे भेद मन से मेट सब, सर्वात्म-अनुसंधान कर॥2॥

जो ब्रह्म सबमें देखते हैं, ध्यान धरते ब्रह्म का।
भव जाल से हैं छूटते, साक्षात करे हैं ब्रह्म का॥
नर मूढ़ पाता क्लेश है, अपना-पराया मानकर।
ममचा-अहंता त्याग दे, सर्वात्म-अनुसंधान कर॥3॥

वैरी भयंकर है विषय, कीड़ा न बन तू भोग का।
चंचलता मन की मिटा, अभ्यास करके योग का॥
यह चित्त होता मुक्त है, 'सब ब्रह्म है' यह जानकर।
कर दर्श सबमें ब्रह्म का, सर्वात्म-अनुसंधान कर॥4॥

जब नाश होता चित्त का, योगी महा फल पाय है।
जो पूर्ण शशि है शोभता, सब विश्व में भर जाय है॥
चिन्मात्र संवित् शुद्ध जल में, नित्य ही तू स्नान कर।
मन मैल सारा डाल धो, सर्वात्म-अनुसंधान कर॥5॥

जो दीखता होता स्मरण, जो कुछ श्रवण में आये है।
मिथ्या नदी मरुभूमि की है, मूढ़ धोखा खाये हैं॥
धोखा न खा सुखपूर्ण आत्मा-सिन्धु का जलपान कर।
प्यासा न मर पीयूष पी, सर्वात्म-अनुसंधान कर॥6॥

ममतारहित निर्द्वन्द्व हो, भ्रम-भेद सारे दे हटा।
मत राग कर मत द्वेष कर, सब दोष मन के दे मिटा॥
निर्मूल कर दे वासना, निज आत्म का कल्याण कर।
भाण्डा दुई का फोड़ दे, सर्वात्म-अनुसंधान कर॥7॥

देहात्म होती बुद्धि जब, धन मित्र सुत हो जाय हैं।
ब्रह्मात्म होती दृष्टि जब, धन आदि सब खो जाय हैं॥
मल-मूत्र के भण्डार नश्वर, देह को पहचान कर।
भोला ! प्रमादी मत बने, सर्वात्म-अनुसंधान कर॥8॥
ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

बस, आपमें लवलीन हो

तू शुद्ध है तेरा किसी से, लेश भी नहीं संग है।
क्या त्यागना तू चाहता? चिन्मात्र तू निस्संग है॥
निस्संग निज को जान ले, मत हो दुःखी मत दीन हो।
इस देह से तज संग दे, बस आपमें लवलीन हो॥1॥

जैसे तरंगे बुलबुले, झागादि बनते सिन्धु से।
त्यों ही चराचर विश्व बनता, एक तुझ चित्सिन्धु से॥
तू सिन्धु सम है एक-सा, नहीं जीर्ण हो न नवीन हो।
अपना पराया भेद तज, बस आपमें लवलीन हो॥2॥

अपरोक्ष यद्यपि दीखता, नहीं वस्तुतः संसार है।
तुझ शुद्ध निर्मल तत्त्व में, सम्भव न कुछ व्यापार है॥
ज्यों सर्प रस्सी का बना, फिर रज्जु में ही लीन हो।
सब विश्व लय कर आपमें, बस आपमें लवलीन हो॥3॥

सुख-दुःख दोनों जान सम, आशा-निराशा एक सी।
जीवन-मरण भी एक-सा, निंदा-प्रशंसा एक-सी॥
हर हाल में खुशहाल रह, निर्द्वन्द्व चिन्ताहीन हो।
मत ध्यान कर तू अन्य का, बस आपमें लवलीन हो॥4॥

भूमा अचल शाश्वत् अमल, सम ठोस है तू सर्वदा।
यह देह है पोला घड़ा, बनता बिगड़ता है सदा॥
निर्लेप रह जल विश्व में, मत विश्व जल की मीन हो।
अनुरक्त मत हो देह में, बस आपमें लवलीन हो॥5॥

यह विश्व लहरों के सदृश, तू सिन्धु ज्यों गम्भीर है।
बनते बिगड़ते विश्व हैं, तू निश्चल ही रहे॥
मत विश्व से सम्बन्ध रख, मत भोग के आधीन हो।
नित आत्म-अनुसंधान कर, बस आपमें लवलीन हो॥6॥

तू सीप सच्ची वस्तु है, यह विश्व चाँदी है मृषा।
तू वस्तु सच्ची रज्जु है, यह विश्व आहिनी है मृषा॥
इसमें नहीं संदेह कुछ, प्यारे ! न श्रद्धाहीन हो।
विश्वास कर विश्वास कर, बस आपमें लवलीन हो॥7॥

सब भूत तेरे माँही हैं, तू सर्व भूतों माँही है।
तू सूत्र सबमें पूर्ण है, तेरे सिवा कुछ नहीं है॥
यदि हो न सत्ता एक तो, फिर चर अचर कुछ भी न हो।
भोला ! यही सिद्धान्त है, बस आपमें लवलीन हो॥8॥

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

छोड़ूँ किसे पकड़ूँ किसे?

अक्षुब्ध मुझ अम्बोधि में, ये विश्व नावें चल रहीं।
मन वायु की प्रेरी हुई, मुझ सिन्धु में हलचल नहीं॥
मन वायु से मैं हूँ परे, हिलता नहीं मन वायु से।
कूटस्थ ध्रुव अक्षोभ है, छोड़ूँ किसे पकड़ूँ किसे?॥1॥

निस्सीम मुझ सुख-सिन्धु में, जग-वीचियाँ उठती रहें।
बढ़ती रहें घटती रहें, बनती रहें मिटती रहें॥
अव्ययरहित उत्पत्ति से हूँ, वृद्धि से अरु अस्त से।
निश्चल सदा ही एक-सा, छोड़ूँ किसे पकड़ूँ किसे?॥2॥

अध्यक्ष हूँ मैं विश्व का, यह विश्व मुझमें कल्पना।
कल्पे हुए से सत्य को, होती कभी कुछ हानि ना॥
अति शांति बिन आकार हूँ, पर रूप से पर नाम से।
अद्वय अनामय तत्त्व मैं, छोड़ूँ किसे पकड़ूँ किसे?॥3॥

देहादि नहीं है आत्म में, नहीं आत्म है देहादि में।
आत्म निरंजन एक-सा है, अंत में क्या आदि में॥
निस्संग अच्युत निःस्पृही, अति दूर सर्वोपाधि से।
सो आत्म अपना आप है, छोड़ूँ किसे पकड़ूँ किसे?॥4॥

चिन्मात्र मैं ही सत्य हूँ, यह विश्व वंध्यापुत्र है।
नहीं बाँझ सुत जनती कभी, सब विश्व कहने मात्र है॥
जब विश्व कुछ है ही नहीं, सम्बन्ध क्या फिर विश्व से।
सम्बन्ध ही जब है नहीं, छोड़ूँ किसे पकड़ूँ किसे?॥5॥

नहीं देह में नहीं इन्द्रियाँ, मन भी नहीं नहीं प्राण हूँ।
नहीं चित्त हूँ नहीं बुद्धि हूँ, नहीं जीव नहीं विज्ञान हूँ॥
कर्ता नहीं भोक्ता नहीं, निर्मुक्त हूँ मैं कर्म से।
निरूपाधि संवित् शुद्ध हूँ, छोड़ूँ किसे पकड़ूँ किसे?॥6॥

है देह मुझमें दीखता, पर देह मुझमें है नहीं।
दृष्टा कभी नहीं दृश्य से, परमार्थ से मिलता कहीं॥
नहीं त्याज्य हूँ नहीं ग्राह्य हूँ, पर हूँ ग्रहण से त्याग से।
अक्षर परम आनन्दघन, छोड़ूँ किसे पकड़ूँ किसे?॥7॥

अज्ञान में रहते सभी, कर्तापना भोक्तापना।
चिद्रूप मुझमें लेश भी, सम्भव नहीं है कल्पना॥
यों स्वात्म-अनुसंधान कर, छेटे चतुर भवबन्ध से।

भोला ! न अब संकोच कर, छोड़ूँ किसे पकड़ूँ किसे?॥8॥
ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

बन्धन यही कहलाय है?

मैं तू नहीं पहचानना, विषयी विषय नहीं जानना।
आत्मा अनात्मा मानना, निज अन्य नहीं पहिचानना॥
चेतन अचेतन जानना, अति पाप माना जाय है।
सन्ताप यह भी देह है, बन्धन यही कहलाये है॥1॥

क्या ईश है? क्या जीव है? यह विश्व कैसे बन गया?
पावन परम निस्संग आत्मा, संग में क्यों सन गया?
सुख-सिन्धु आत्मा एकरस, सो दुःख कैसे पाय है?
कारण न इसका जानना, बन्धन यही कहलाय है॥2॥

इस देह को 'मैं' मानना, या इन्द्रियाँ 'मैं' जानना।
अभिमान करना चित्त में, या बुद्धि 'मैं' पहचानना॥
देहादि के अभिमान से, नर मूढ़ दुःख उठाये हैं।
बहु योनियों में जन्मता, बन्धन यही कहलाये हैं॥3॥

बड़ी कठिन है कामना, आसक्ति दृढ़तम जाल है।
ममता भयंकर राक्षसी, संकल्प काल ब्याल है॥
इन शत्रुओं के वश हुआ, जन्मे-मरे पछताये है।
सुख से कभी सोता नहीं, बन्धन यही कहलाये है॥4॥

यह है भला यह है बुरा, यह पुण्य है यह पाप है।
यह लाभ है यह हानि है, यह शीत है यह ताप है॥
यह ग्राह्य है यह त्याज्य है, यह आय है यह जाय है।
इस भाँति मन की कल्पना, बन्धन यही कहलाये है॥5॥

श्रोत्रादि को 'मैं' मान नर, शब्दादि में फँस जाय है।
अनुकूल में सुख मानता, प्रतिकूल से दुःख पाये हैं॥
पाकर विषय है हर्षता, नहीं पाय तब घबराये है।

आसक्त होना भोग में, बन्धन यही कहलाये है॥6॥

सत्संग में जाता नहीं, नहीं वेद आज्ञा मानता।
सुनता न हित उपदेश, अपनी तान उलटी तानता॥
शिष्टाचरण करता नहीं, दुष्टाचरण ही भाये है।
कहते इसे हैं मूढ़ता, बन्धन यही कहलाये है॥7॥

यह चित्त जब तक चाहता, या विश्व में है दौड़ता।
करता किसी को है ग्रहण, अथवा किसी को छोड़ता॥
सुख पाय के है हर्षता, दुःख देखकर सकुचाये है।
भोला ! न तब तक मोक्ष हो, बन्धन यही कहलाये है॥8॥
ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

इच्छा बिना ही मुक्त है

ममता नहीं सुत दार में, नहीं देह में अभिमान है।
निन्दा प्रशंसा एक-सी, सम मान अरु अपमान है॥
जो भोग आते भोगता, होता न विषयासक्त है।
निर्वासना निर्द्वन्द्व सो, इच्छा बिना ही मुक्त है॥1॥

सब विश्व अपना जानता, या कुछ न अपना मानता।
क्या मित्र हो क्या शत्रु, सबको एक सम सम्मानता है॥
सब विश्व का है भक्त जो, सब विश्व जिसका भक्त है।
निर्हेतु सबका सुहृद सो, इच्छा बिना ही मुक्त है॥2॥

रहता सभी के संग पर, करता न किंचित संग है।
है रंग पक्के में रँगा, चढ़ता न कच्चा रंग है॥
है आपमें संलग्न, अपने आप में अनुरक्त है।
है आपमें संतुष्ट सो, इच्छा बिना ही मुक्त है॥3॥

सुन्दर कथायें जानता, देता घने दृष्टान्त है।
देता दिखाई भ्रांत-सा, भीतर परम ही शांत है॥
नहीं राग है नहीं द्वेष है, सब दोष है निर्मुक्त है।

करता सभी को प्यार सो, इच्छा बिना ही मुक्त है॥4॥

नहीं दुःख से घबराय है, सुख की जिसे नहीं चाह है।
सन्मार्ग में विचरे सदा, चलता न खोटी राह है॥
पावन परम अन्तःकरण, गम्भीर धीर विरक्त है।
शम दम क्षमा से युक्त हो, इच्छा बिना ही मुक्त है॥5॥

जीवन जिसे रुचता नहीं, नहीं मृत्यु से घबराय है।
जीवन मरण है कल्पना, अपना न कुछ भी जाय है॥
अक्षय अजर शाश्वत अमर, निज आत्म में संतृप्त है।
ऐसा विवेकी प्राज्ञ नर, इच्छा बिना ही मुक्त है॥6॥

माया नहीं काया नहीं, वन्ध्या रचा यह विश्व है।
नहीं नाम ही नहीं रूप ही, केवल निरामय तत्त्व है॥
यह ईश है यह जीव माया, माँही सब संक्लृप्त है।
ऐसा जिसे निश्चय हुआ, इच्छा बिना ही मुक्त है॥7॥

कर्तव्य था सो कर लिया, करना न कुछ भी शेष है।
था प्राप्त करना पा लिया, पाना न अब कुछ लेश है॥
जो जानता या जानकर, स्व-स्वरूप में संयुक्त है।
भोला ! नहीं संदेह सो, इच्छा बिना ही मुक्त है॥8॥
ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

ममता अहंता छोड़ दे

पूरे जगत के कार्य कोई, भी कभी नहीं कर सका।
शीतोष्ण से सुख-दुःख से, कोई भला क्या तर सका?
निस्संग हो निश्चिन्त हो, नाता सभी से तोड़ दे।
करता भले रह देह से, ममता अहंता छोड़ दे॥1॥

संसारियों की दुर्दशा को, देख मन में शांत हो।
मत आश का हो दास तू, मत भोगसुख में भ्रांत हो॥
निज आत्म सच्चा जानकर, भाण्डा जगत का फोड़ दे।

अपना पराया मान मत, ममता अहंता छोड़ दे॥2॥

नश्वर अशुचि यह देह, तीनों ताप से संयुक्त हो।
आसक्त हड्डी मांस पर, होना तुझे नहीं युक्त हो॥
पावन परम निज आत्म में, मन वृत्ति अपनी जोड़ दे।
संतोष समता कर ग्रहण, ममता अहंता छोड़ दे॥3॥

है काल ऐसा कौन-सा, जिसमें न कोई द्वन्द्व है।
बचपन तरुणपन वृद्धपन, कोई नहीं निर्द्वन्द्व है॥
कर पीठे पीछे द्वन्द्व सब, मुख आत्म की दिशि मोड़ दे।
कैवल्य निश्चय पायेगा, ममता अहंता छोड़ दे॥4॥

योगी महर्षि साधुओं की, हैं धनी पगडण्डियाँ।
कोई सिखाते सिद्धियाँ, कोई बताते रिद्धियाँ॥
ऊँचा न चढ़ नीचा न गिर, तज धूप दे तज दौड़ दे।
सम शांत हो जा एकरस, ममता अहंता छोड़ दे॥5॥

सुखरूप सच्चित् ब्रह्म को, जो आत्म अपना जानता।
इन्द्रादि सुर के भोग सारे, ही मृषा है मानता॥
दस सौ हजारों शून्य मिथ्या, छोड़ लाख करोड़ दे।
एक आत्म सच्चा ले पकड़, ममता अहंता छोड़ दे॥6॥

गुण तीन पाँचों भूत का, यह विश्व सब विस्तार है।
गुण भूत जड़ निस्सार सब, तू एक द्रष्टा सार है॥
चैतन्य की कर होड़ प्यारे ! त्याग जड़ की होड़ दे।
तू शुद्ध है तू बुद्ध है, ममता अहंता छोड़ दे॥7॥

शुभ होय अथवा हो अशुभ, सब वासनाएँ छाँट दे।
निर्मूल करके वासना, अध्यास की जड़ काट दे॥
अध्यास खुजली कोढ़ है, कोढ़ी न बन तज कोढ़ दे।
सुख शांति भोला ! ले पकड़, ममता अहंता छोड़ दे॥8॥

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम